(Assignment)

Name Sarswati Kumari

Program B.A (Hons.) Sanskrit CBCS

Semester IVth

Unique paper Code 12133905

Name of the paper - Sanskrit Meters And Music

Collge Roll no- SKT/19/19

Q1. मूर्छनालक्षणं तद्भेदाश्च

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्छनेत्युच्यते ग्रामद्वये ताः सप्त सप्त च

(मूर्छना का लक्षण और उसके भेद)

⟹ क्रमात् क्रम से सप्तानां स्वराणां सात स्वरों का आरोहः अवरोहणं च आरोह और अवरोह मूर्छना इति उच्यते मूर्छना (है) इस प्रकार कहा जाता है ताः वे और वे ग्रामद्वये दो ग्रामों में सप्त - सप्त सात - सात (होती हैं)

(स०) ग्राम के लक्षण में उसे

मूर्छनादि का आश्रय कथन जा चुका
है। इसलिये सबसे पहले मूर्छना से
ग्रन्थकार ने शुरू किया है।

मतंग के 'मूर्छना' शब्द की व्युत्पत्ति
के अनुसार। 'मूर्छ' धातु से
है जिसके अर्थ है → (जिसके द्वारा श्रोता मोहित होते है,
और समुच्छ्राय)

मोह और समुच्छ्राय (व्याप्त होना, वृद्धि)
कोहल० ने 'मूर्छ' धातु से व्युत्पत्ति
की है। इस प्रकार 'मूर्छना' शब्द
'मूर्छ' या 'मुर्छ' धातु से निष्पन्न
है। (इन धातुओं में विकल्प
और 'य' कार होने पर मुर्छना
बनता है होने पर 'मूर्छना'

कोहल० → के अनुसार धातु को
मोहार्थक मानने पर मूर्छना का
अर्थ है।। → जिसके द्वारा श्रोता
मोहित होते है और समुच्छ्राय अर्थ
का ग्रहण करने पर अर्थ है।।
।। जिसके द्वारा राग व्याप्त होते है।।
अर्थात उभरते हैं। सिंह० ने यह
स्पष्ट किया है कि मूर्छना के
लक्षण में स्वर का आरोह और
अवरोह क्रम ही विवक्षित है,
आरोह और अवरोहरूप क्रियां
नहीं। ----

ग्रन्थकार द्वारा मूर्च्छना लक्षण में संयुक्त क्रमात् । सप्तानां और आरोहावरोहणं पर टीका करते हुए कल्लि॰ ने यह स्पष्ट किया है कि कूटतानों से मूर्च्छना को अलग करने के लिये 'क्रमात्' का प्रयोग किया है (क्योंकि कूटतानों में व्युत्क्रम होता है सीधा क्रम नहीं) सप्तानां के द्वारा शुद्ध तानों का निरास किया है (क्योंकि शुद्धतानों में ६ या ५ स्वरों का प्रयोग होता है ७ का नहीं) आरोहावरोहणं के द्वारा आरोही अवरोही वर्ण और उन पर आधारित अलंकारों का निषेध किया है। उसने यह भी कहा है कि मतंग नन्दिकेश्वरादि ने तीन स्थानों की व्याप्ति की सिद्धि के लिये लक्ष्य के अनुरोध से द्वादशस्वर मूर्च्छना भी कही है लेकिन ग्रामिक प्रयोग में (ग्रामिक जाति-रागादि के रूप में) यह प्रयोजन सिद्ध हो ही जाता है इसलिये ग्रन्थकार ने उन्हें अलग से कहने की जरूरत नहीं समझी है।

भरत में मूर्च्छना लक्षण में आरोह अवरोह सम्मिलित नहीं है।---

मतंग ने आरोह - अवरोह क्रम कहा है। लेकिन मूर्छना और तान का भेद बताते समय मूर्छना में आरोह क्रम और तान में अवरोह क्रम कहा है।

सप्त स्वर

श्रुतिभ्य स्यु: स्वरा: षड्जर्षभगान्धार- मध्यमा: पञ्चमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते ॥

श्रुतिभ्य: श्रुतियों के द्वारा स्वरा: स्यु: स्वर होते हैं। षड्ज - ऋषभ - गान्धार मध्यमा: पञ्चम: धैवत: च षड्ज गान्धार, मध्यम, पंचम और धैवत अथ निषाद: और निषाद इति ते वे सात (स्वर हैं) तेषां उनके सरिगमपधनि - इति स. रि. ग. म. प. ध. नि - ये अपरा संज्ञा अन्य संज्ञाएं (नाम) मान मानी गई है।

सिंह: और कल्लि दोनों ने श्रुति और स्वर के संबंध पर मतंग द्वारा दिये पाँच पक्षो को उद्धृत करते हुए व्याख्या की है यद्यपि सिंह ने इनकी चर्चा अगले श्लोक में की है।

(1) स्वर और श्रुति दोनों का ग्रहण एक ही इन्द्रिय → श्रवण - द्वारा होने

के कारण दोनों में कई पृथक
स्पष्ट न होने से दोनों में
जाति और व्यक्ति की तरह
तादात्म्य है।

(2) दर्पण में पड़ने की तरह श्रुतियों
में स्वर विवर्तित होते हैं।

(3) जैसे मिट्टी के पिण्ड दण्ड आदि
घट के कारण हैं उसी तरह
श्रुतियाँ स्वर का कारण हैं

(4) जैसे दुध दही के रूप में परिणत
होता है उसी तरह स्वर भी
श्रुतियों का परिणाम है।

(5) अंधेरे में रखे घट आदि को जैसे
दीपक अभिव्यक्त कर देता है उसी
तरह श्रुतियों के द्वारा स्वर
अभिव्यक्त होते हैं।

⟹ यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है
कि " श्रुतियों से स्वर " का क्रम
व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक दृष्टि
से तो समीचीन है लेकिन
अनुभूति का क्रम इसके विपरीत
है क्योंकि श्रवण - प्रत्यक्ष स्वरों
का ही होता है, श्रुतियों का नहीं।
भरत ने प्रत्यक्ष से परोक्ष का
क्रिया से सिद्धान्त का क्रम
अपनाया है इसलिये स्वर पहले --

क्रोध कर उसके बाद श्रुति की चर्चा की है लेकिन शाङ्र्गदेव और बाद के सभी शास्त्रकारों ने इसके विपरीत पहले सिद्धान्त निरूपण करके फिर उसे क्रिया के द्वारा सिद्ध करने का क्रम अपनाया है इसीलिये शाङ्र्गदेव ने श्रुतियों से स्वर कहे हैं।

षड्ज → षड्ज स्वर को यह संज्ञा इसलिये दी गई सप्तक के अंगरूप अन्य ६ स्वरों के द्वारा वह उत्पन्न अथवा प्रकाशित होता है अथवा (६) नाम, कण्ठ हृदय तालु • जीभ और दाँत - शरीर के इन ६ ध्वनि उत्पादक अंगों से उत्पन्न होता है।

ऋषभ → जाना अर्थ वाली ऋष धातु से बनने वाले ऋषभ शब्द में धातु के अर्थ के कारण यह अर्थ है कि जो हृदय मे अन्य स्वरों के साथ जाता है अर्थात् हृदय को तुरन्त प्रभावित करता है इसलिये ऋषभ कहलाता है अथवा

जैसे गायो के समूह मे ऋषभ अर्थात् बलवर्द (सांड) विशेष रूप से बलवान दिखाई देता है उसी तरह स्वरों के समूह मे ऋषभ स्वर बलवान होता है अथवा।

(3) ऋषभ (साँड) के समान नाद उत्पन्न करता है (श्रुति) इसलिये यह ऋषभ स्वर है।

गान्धार → धारण अर्थ वाली धृ धातु से 'गो' शब्द उपपद में होने पर 'गान्धार' शब्द बनता है गां धारयतीति तीसरा नाद स्थान श्रुति-स्वर-जाति-कुल-देवता-ऋषि छन्द-रस प्रकरण

गान्धार 'अर्थात गां यानी गानात्मिका वाणी को धारण करता है इसलिये यह स्वर गान्धार कहलाता है।
अथवा
गन्धर्वों के सुख का कारण है इसलिये गान्धार कहलाता है।

- मध्यम → सात स्वरों के मध्य में रह कर स्वरों का मान (माप) करने के कारण मध्यम कहलाता है।

पञ्चम : विस्तार अर्थ वाली पच् धातु और नापना अर्थ वाली 'मि' धातु से मिल कर यह शब्द बनता है। तदनुसार अन्य स्वरों के विस्तार को नापता है इसलिये पंचम कहलाता है।

षड्ज : सारणा विधि से यह---

स्पष्ट हो चुका है कि सभी स्वरों की अपनी-अपनी श्रुति संख्या के रूप में उनके विस्तार को नापने के लिये पंचम से ही क्रिया शुरू करना संभव है, अन्य किसी स्वर से नहीं। इस रूप में पंचम ही अन्य स्वरों को नापता है। इसीलिये पंचम अपकर्ष से प्राप्त पंचम की श्रुति को प्रमाणश्रुति कहा गया है इसी तथ्य की ओर यहाँ संकेत है

अथवा स्वरों के क्रम में यह पञ्चम (पाँचवे) स्थान पर है इसलिये पञ्चम कहलाता है अथवा उच्चारण स्थानों में पाँचवे स्थान से उत्पन्न होता है इसलिये पञ्चम संज्ञा है।

धैवत ⟹ (i) धीवान् अर्थात सूक्ष्म बुद्धि वाले व्यक्तियों के द्वारा सुना जाने के कारण धैवत कहलाता है मतंग के इस कथन की कोई स्पष्ट व्याख्या कल्लि० ने नहीं की है। किन्तु संभवतः उक्त कथन में षड्जग्रामिक स्वरों में धैवत की प्राप्ति संबंधी सूक्ष्म तथ्य की ओर संकेत है षड्जग्राम में धैवत षड्ज पंचम अथवा षड्ज मध्यम संवाद के आधार पर प्राप्त नहीं होता बल्कि मन्द्र षड्ज के और संकेत है षड्जग्राम में-

में धैवत षड्ज पंचम अथवा षड्ज अथवा षड्ज मध्यम संवाद के आधार पर प्राप्त नहीं होता अधिक स्पष्ट षड्ज अन्तर गान्धार में होता है वही मध्यम धैवत में है लेकिन दो प्रमुख संवादों जैसा स्पष्ट न होने और सूक्ष्म सवीन्द्रिय वाले व्यक्तियों के द्वारा ग्राह्य होने के कारण इस संवाद के आधार पर सुना जाने वाला स्वर होने से इसे धैवत संज्ञा दी गई है अथवा (2) उच्चारण स्थानों में से छठे स्थान ललाट में धारण होता है इसलिये धैवत कहलाता है।

- निषद → गति (जाना) अर्थ वाली षद्ल धातु से यह शब्द बनता है जिसका अर्थ है जिसमें पर्यवसित हो/ सप्तक का अन्तिम स्वर होने से अन्य स्वर इसमें पर्यवसित होते हैं इसलिये निषाद कहलाता है/

सिद्ध० → जो संगीत समयसार का वह अंश उद्धृत किया है जिसमें स्वरो की निरुक्ति दी गई है यह अंश भी मतंग की पुष्टि करता है।

कल्लि० ने यह संकेत भी
किया है कि इन सात स्वरों
का शरीर की सप्त धातुओं
और सप्त चक्रों से संबंध
भी मतंग के अनुसार
समझा जा सकता है संबंधित
अंश बृहद्देशी के मूल पाठ में
अथवा बृहद्देशी कल्लि० द्वारा उद्धृत
बृहद्देशी के स्वरों अंश में नहीं है।
लेकिन स्वरों की दीपावलि की
टीका में सिंह० ने मतंग
का वह अंश उद्धृत किया
है उपर्युक्त संबंध शारदातनय
ने भावप्रकाशनम् में दिखाया
है।

प्रयोग की सुविधा के लिये
षड्जादि संज्ञाओं के पहले
पहले अक्षर लेकर स-रि
ग आदि नामों का ग्रहण
किया गया है। स्वरांकन
की यह सर्वप्राचीनतम विधि
है जो सबसे पहले बृहद्देशी
में प्राप्त है षड्ज और
ऋषभ के प्रथम अक्षर
ष और ऋ हैं लेकिन
इनके इनके बजाय स
और रि का ग्रहण किया

गया है सिद्ध० ने इन्हें अपभ्रंश रूप कहा है।

कल्लि० → ने संस्था के आधार पर मन्त्रशास्त्र के अनुसार स, रि, ग आदि नामों के बीज मन्त्रों में बताए हैं मन्त्रशास्त्र की परम्परा है बीज बताने की देवताओं के वाचक माने गए हैं। किसी मन्त्र का बीज कहने का तात्पर्य यह है कि →

उस बीज के वाचक देवता की उपासना उस मन्त्र में है अ विष्णु का और इ शक्ति का वाचक माना गया है। यही बीज संगीत के स, रि, ग आदि स्वरों में भी कल्लि० ने सात स्वर के आधार पर दिखाये हैं। मातंग और रि, नि में नामों में इकार है और शेष सब में अकार है इसलिये इन्होंने दो स्वरों को शक्ति का प्रतीक मान कर उनका नाम शक्तिबीज कहा है और शेष स्वरों में अ होने से वे विष्णु के प्रतीक रूप में हरिबीज से युक्त कहे गये हैं---

कहिल० ने शंका उठा कर
पद समाधान किया है कि
आचार्यों की परिभाषा यानी
विशेष प्रयोग के अनुसार
ये नाम ध्वनियों के संकेत
मात्र है इसलिये ऐसी शंका
नहीं करनी चाहिये।

• स्वर की लक्षण

श्रुति अनन्तर - भावी श्रुति
के बाद अथवा बिना
अन्तर के (अर्थात् ठीक साथ)
होने वाला यः जो स्निग्ध
कि० स्निग्ध अनुरणन आत्मक
अनुरणनरूप (नाद) श्रोत्रियत
श्रोता के चित को स्वतः
रंजयति स्वतः रंजित करता
है सः वह स्वर उच्यते
स्वर कहा जाता है।

सं वीणा के तार में स्वर की
अपनी श्रुति के स्थान पर
आघात होते ही जो मूल
नाद उत्पन्न होता है वही
श्रुति उसके ठीक साथ जो
अनुरणन होता है जो
स्निग्ध अर्थात चिकनेपन से

युक्त/युक्त होते हैं जो देर तक सुनाई देता है स्वयं अपने किसी सहायता के बिना चित्त को रंजित करता श्रोता अपने स्वरूप में रंग देता है वह स्वर है।

श्रुति को रणनरूप और स्वर को अनुरणनरूप माना गया है रणन और अनुरणन को स्पष्ट करने के लिये घंटे नाद का उदाहरण दिया जाता है घंटे पर चोट पड़ते ही जो ध्वनि होती है वह रणन और उसी के साथ उत्पन्न होकर देर तक जो ध्वनि (गूँज) सुनाई देती रहती है वह अनुरणन कहलाता है अनुरणन का शाब्दिक अर्थ है रणन के बाद होने वाला/

यह विचारणीय है कि घंटे पर टकोर पड़ते ही उत्पन्न होने वाली प्रथम ध्वनि और उसके बाद देर तक होने वाले अनुरणन में तो अन्तर स्पष्टत: सुना जा सकता है--

लेकिन तंत्री पर आघात से उत्पन्न ध्वनि में श्रुति व स्वर के रूप मे भिन्न ध्वनियां उत्पन्न नही होती और न कान द्वारा ग्रहण की जाती है।

यह ध्यान मे रखना चाहिये कि साहृश्य आंशिक रूप में ही लागू होता है न्याय सिद्धान्त मुक्तावलि में कहा भी गया है वर्णो और उन पर आधारित अलंकारों का निषेध किया है उसने यह भी कहा है कि मात्रा वृद्धि केवृ धरादि के तीन स्थान लिये की व्याप्ति की सिद्धि से लिये लक्ष्य के अनुरोध से द्वादशस्वर मुख्य होना भी कहा है लेकिन ग्रामिक प्रयोग में (ग्रामिक - जाति-रागादि के रूप में) वह प्रयोजन सिद्ध हो ही जाता है इसलिये लेखक का उन्हे अलग से कहने की जरूरत नही समझी है।